IJMRSETM

e-ISSN: 2395 - 7639

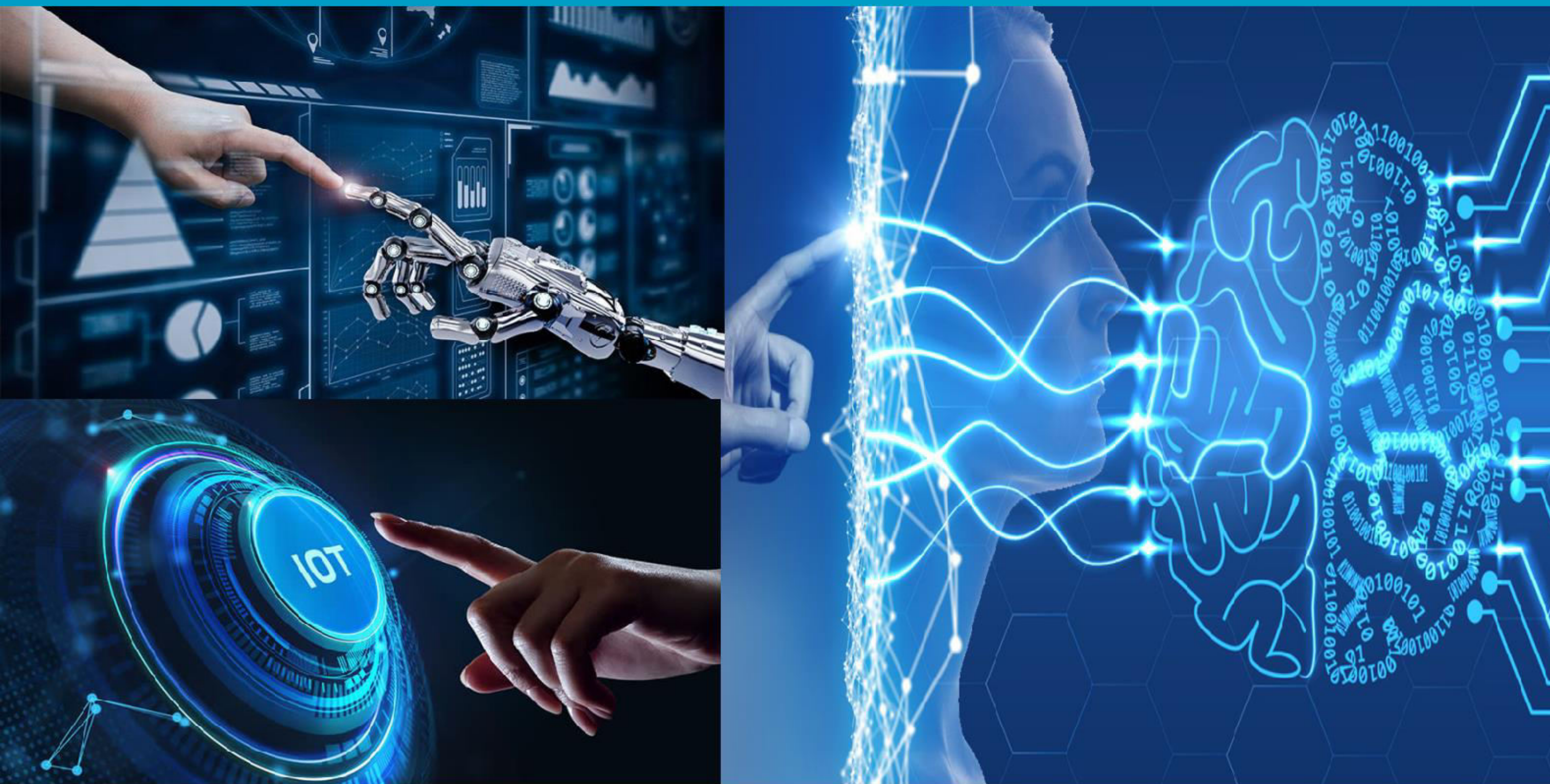

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY RESEARCH

IN SCIENCE, ENGINEERING, TECHNOLOGY AND MANAGEMENT

Volume 9, Issue 11, November 2022

INTERNATIONAL STANDARD SERIAL NUMBER INDIA

Impact Factor: 7.580

+91 99405 72462 +9163819 07438 ijmrsetm@gmail.com www.ijmrsetm.com

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580|

| Volume 9, Issue 11, November 2022 |

| DOI: 10.15680/IJMRSETM.2022.0911008 |

भारतीय आदिवासी समुदाय में सांस्कृतिक चेतना

Dr. Pinkey Yogi

Assistant Professor, Philosophy, SPC Govt. College, Ajmer, Rajasthan, India

सार

नई सदी में आदिवासी विमर्श व चिंतन साहित्य एवं समाज के लिए चर्चित विषय बना हुआ है। आदिकाल से ही आदिवासी समाज को एक पिछड़ा समाज मानकर उनके साथ दोयम दर्जे का व्यवहार किया जाता रहा है। परंतु वर्तमान शिक्षा के प्रचार-प्रसार, शोषणकारी नीतियों के विरूद्ध सामाजिक व साहित्यिक आंदोलनों से आदिवासी समाज में भी जागृति आयी है। आदिवासी साहित्य आदिवासी व गैर आदिवासी साहित्यकारों के द्वारा प्रचुर मात्रा में लिखा जा रहा है जिससे आदिवासियों के प्रति लोगों का नजरिया बदल रहा है। आदिवासी जीवन, रहन-सहन, परम्पराओं एवं सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्थाओं पर साहित्य की प्रत्येक विधा में लेखन कार्य हो रहा है। आदिवासियों को मुख्य समाज द्वारा जंगली, बर्बर, मूर्ख, भोला आदि की संज्ञा दी जाती है जिससे उनमें स्वयं के अस्तित्व व जीवन व्यवस्थाओं के प्रति हीन भावना विकसित हो जाती है। आदिवासी साहित्य उन्हें इस हीन ग्रंथि से मुक्त कराने का हथियार तो है ही साथ ही उनमें चेतना जागृत करने का प्रमुख स्त्रोत है व आत्मविश्वास जगाने का जरिया भी है।

बीज शब्द : आदिवासी, जनजाति, समाज, संस्कृति, आदिवासी साहित्य, दर्शन, जीवन शैली, प्रकृति।

परिचय

आदिम जातियों और जनजातियों के लिए 'आदिवासी' शब्द का प्रयोग प्राचीन समय से ही किया जाता रहा है। इन्होंने अपनी सभ्यता और संस्कृति की धरोहरों को युगों से संजोया हुआ है इसीलिए ये राष्ट्र के असली वारिस कहे जा सकते हैं। सभ्यता और संस्कृति के विकास में इनकी भूमिका मुख्यधारा से अधिक प्राचीन व वास्तविक है। फिर भी आज ये लोग मुख्य धारा से विलग अस्तित्व की पहचान के संकट से जूझ रहे हैं। इसका कारण वर्तमान विकासवादी प्रक्रिया के साथ ही इन का अंधविश्वास, जड़ता व रूढ़िवादी परंपराएँ रही है। यह समाज आज भी अभावग्रस्त रूप से मुख्य समाज से दूर पहाड़ों व दूरदराज के इलाकों में आधुनिक सुख-सुविधाओं के अभाव में दमन व शोषणकारी परिस्थितियों में जीवनयापन कर रहा हैं। [1,2]

आदिवासी कौन है यह प्रश्न वर्षों से विचार-विमर्शों और संगोष्ठियों का मुख्य विषय रहा है। विनायक तुकाराम के अनुसार "वर्तमान स्थिति में 'आदिवासी' शब्द का प्रयोग विशिष्ट पर्यावरण में रहने वाले, विशिष्ट भाषा बोलने वाले, विशिष्ट जीवन पद्धति तथा परंपराओं से सजे और सदियों से जंगल, पहाड़ों में जीवन यापन करते हुए अपने धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों को संभालकर रख ने वाले मानव समूह का परिचय करा देने के लिए किया जाता है और बहुत बड़े पैमाने पर उनके सामाजिक दु:ख तथा नष्ट हुए संसा र पर दु:ख प्रकट किया जाता है। उनके प्रश्नों तथा समस्याओं पर जी तोड़कर बोला जाता है।"

आज़ादी से पहले और तब से लेकर आज तक आदिवासियों की मूल समस्याएं वनोपज पर प्रतिबंध, जंगलों से खदेड़ा जाना, तरह-तरह के लगान, महाजनी शोषण, पुलिस प्रशासन की जाततियां आदि है। सरकार द्वारा अपनाए गये विकास के गलत मॉडल ने आदिवासियों से उनके जल, जंगल और ज़मीन छीनकर उन्हें बेदखल तो किया ही है साथ ही प्रकृति को भी नष्ट किया है। विस्थापन उनके जीवन की मुख्य समस्या बन गई है। इस प्रक्रिया में उनके सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान व अस्तित्व का संकट खड़ा हो गया है। आदिवासी समाज प्रकृति पूजक है तथा प्रकृति का अपमान उनके लिए असहनीय है। इसीलिए अपने अस्तित्व और अस्मिता के साथ प्रकृति को बचाने के लिए आदिवासी विमर्श और चिंतन की आवश्यकता इस समाज द्वारा अधिक महसूस की जाने लगी है। आदिवासी समाज की संस्कृति, जीवन शैली प्रकृति के साथ तालमेल पर आधारित हैं। रमणिका गुप्ता के शब्दों में "हम प्रकृति पर कब्जा नहीं करना चाहते न उस पर अपना वर्चस्व जताना चाहते हैं। हम साथ-साथ जीने में विश्वास करते हैं, विनाश में नहीं।"[2] आदिवासी

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580|

| Volume 9, Issue 11, November 2022 |

| DOI: 10.15680/IJMRSETM.2022.0911008 |

समाज को मुख्यधारा का समाज हमेशा से हेय दृष्टि से देखता रहा हैं। समाजशास्त्री, राजनीतिज्ञ और अधिकतर साहित्यकार भी अपने पूर्वाग्रहों के चलते अकसर आदिवासी समाज के स्वरूप पर चर्चा करते हुए इनके समाज की सही पड़ताल नहीं कर पाते। आदिवासी समाज का अपना एक अलग जीवन और संसार हैं। उनके समाज की एक अलग सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना हैं। इसकी एक प्राचीन परंपरा रही हैं। अपने समाज को चलाने, अपनी संस्कृति को समृद्ध करने और जीवन के लोकरंग के उनके अपने मानदंड हैं। यह समाज जीवन को बिना किसी दिखावे और बनावटीपन के सहज एवं सरल रूप में जीता हैं साथ ही विविधता से भरी संस्कृति के आलोक में ही जीवन संचालित करता है।

समानता और स्वतंत्रता के भाव आदिवासी समाज में स्थायी रूप से देखने को मिलते हैं। आदिवासी समाज में स्त्री को मुख्यधारा के समाज की तरह बाँधकर नहीं रखा जाता उसे पुरुष समान ही स्वतंत्रता प्राप्त है। आदिवासी समाज में अपने पूर्वजों को ही देवता के रूप में स्थापित किया जाता है। आदिवासी समुदाय का कोई विशेष धर्म नहीं हैं। धार्मिक मामलों में भी आदिवासी समाज में आडंबर मुख्यधारा के समाज की अपेक्षा कम है। बहुत सारे धार्मिक स्थलों पर जो लूट और जनता का शोषण देखने को मिलता है उसका आदिवासी समाज में अभाव है। आदिवासी समाज के धार्मिक कर्मकांड भी अधिकांशत: प्रकृति से जुड़े होते हैं। वृक्ष की पूजा आदिवासियों में प्रचलित है। प्रकृति आदिवासी समाज के धर्म और दर्शन दोनों के केंद्र में है।

आदिवासियों की सामाजिक व आर्थिक स्थिति वर्तमान समय में अत्यधिक शोषणकारी होती जा रही है। वैसे तो अंधविश्वास हर तरह के समाज में व्याप्त है। शिक्षित व्यक्ति हो या अशिक्षित; सभी किसी न किसी अंधविश्वास के शिकार होते हैं। लेकिन आदिवासी समाज में ज्यादातर अंधविश्वास उनकी संस्कृति का अंग होते हैं। झाड़-फूंक, जादू-टोना जैसे अंधविश्वास भी आदिवासी समाज में व्याप्त हैं।
रमणिका गुप्ता ने आदिवासियों की आर्थिक स्थिति का निरीक्षण करते हुए लिखा है “जंगल माफिया कीमती पेड़ उनसे सस्ते दामों प र खरीदकर उच्चें दामों पर बेचता है और करोड़पति बन जाता है। पेड़ काटने के आरोप में आदिवासी दंड भरता है या जेल जाता है । सरकार की ऐसी ही नीतियों के कारण आदिवासी जमीन के मालिक बनने के बजाय पहले मजदूर बने फिर बंधुआ मजदूर।”[3] आदिवासी अर्थव्यवस्था वन प्रधान थी, परंतु स्वतंत्रता के बाद जंगलों की कटाई तेजी से होने लगी। "सरकार ने विकास के नाम पर बड़े-बड़े बाँध बनाए जिससे लाखों लोग विस्थापित हुए। हमारे देश की विकास नीति का लक्ष्य होना चाहिए था विकास में सबको समान अधिकार की प्राप्ति, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। विकास तो हुआ, पर कुछ चुनिंदा लोगों का, असंख्य लोगों की कीमत पर। खासकर आदिवासियों की कीमत पर। राष्ट्रीयता के नाम पर आदिवासी लोगों की जमीन अधिग्रहित कर उन्हें विस्थापि त ही नहीं किया गया बल्कि उसके संदर्भ में संविधान में प्राप्त मूल अधिकारों का उल्लंघन भी किया गया। इन विकास परियोजनाओं से इन आदिवासी प्रदेशों अथवा क्षेत्रों का आर्थिक संतुलन भी बिगड़ गया।"[4] सरकार के द्वारा कई योजनाएँ बनाई जाने लगीं जिससे वे अपने वनों, जंगलों से खदेड़ दिए गए। आदिवासियों को गरीबी, बदहाली, अशिक्षा, अंधविश्वास, बेरोजगारी आदि कई मुसीबतें झेलनी पड़ रही हैं।

सामाजिक-आर्थिक स्थिति के साथ ही आदिवासियों की शिक्षा की भी बदतर स्थिति है। आदिवासी समाज के विकास में शिक्षा की भूमिका निर्णा यक है परंतु मुख्यधारा की शिक्षा व्यवस्था से आदिवासियों का कोई भला नहीं हो सकता है क्योंकि जो शिक्षा उन्हें दी जा रही है वह मुख्यधारा से संबंधित है। इसलिए आवश्यक है कि आदिवासियों को शिक्षा उनकी भाषा में दी जाए जिससे अधिगम की सुगमता का विकास हो सके। आदिवासियों के लिए उस शिक्षा या विकास का कोई मतलब न हीं जिसमें उसकी सहभागिता ना हो। अतः शिक्षा से संबंधित इस चुनौती पर गंभीरता से विचार किया जाना चाहिए जिससे सार्थक स माधान की तलाश की जाये।

आदिवासी तथा गैर आदिवासी साहित्यकारों ने आदिवासी अस्मिता के संकट को लेकर चिंता व्यक्त की है। मधु कांकरिया लिखती है कि "आदिवासियों को जंगल, नदी और पहाड़ों से घिरे उनके प्राकृतिक और पारंपरिक परिवेश से बेदखल किया जा रहा है। अभी तक वह अपने विश्वासों, रीति-रिवाजों, लोकनृत्यों और लोकगीतों के साथ कुओं, मवेशियों, नदियों, तालाबों और जड़ी-बूटियों से संपन्न एक जनसमाज में रहता आया है। इसकी अपनी एक विशिष्ट संस्कृति रही है। उसका अपना विकसित अर्थतंत्र था। वह अपने पुश्तैनी, पारंपरिक और कृषि आधारित कुटीर धंधों से परंपरागत था। बढ़ईगिरी, लोहारगिरी, मधुपालन, दोना पत्तल, मधु उत्पादन, रस्सी, चटाई, बुनाई जैसे काम उसे विरासत में मिले थे परन्तु आज खुले बाज़ार की अर्थव्यवस्था ने सदियों से चले आए उनके पुश्तैनी और पारंपरिक धंधों को चौपट कर दिया है।”[5] आदिवासियों ने साहित्यकारों को भी अपनी ओर आकर्षित किया है। आदिवासियों के प्रति जो धारणा बनी हुई थी कि यह जनजाति असभ्य, बर्बर है। इस अवधारणा के प्रति तीव्र विरोध का भाव

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580|

| Volume 9, Issue 11, November 2022 |

| DOI: 10.15680/IJMRSETM.2022.0911008 |

समाजचिंतकों, साहित्यकारों, इतिहासवेत्ताओं ने प्रकट किया है। वर्तमान साहित्यकारों ने आदिवासियों को केंद्र में रखकर कई कहानियाँ, नाटक, उपन्यास, व्यंग्य आदि विधाओं में रचनाएँ की है जिसमें आदिवासियों के निवास स्थान, इनके रीति-रिवाज, रहन-सहन, आचार-विचार, संस्कृति आदि को प्रस्तुत किया गया है। आदिवासी साहित्य दुनिया का सबसे पुराना व जीवंत साहित्य है। आदिवासियों के उन्नयन के लिए लिखा गया साहित्य आदिवासी साहित्य है चाहे उसे कोई भी लिख रहा हो।

इक्कीसवीं सदी के प्रारंभिक दशकों में नये सामाजिक आंदोलनों का जो उभार व विस्तार हुआ उनमें आदिवासियों, स्त्रियों, दलितों, किसानों और अन्य जनजातियों की ऐसी माँगो और सैद्धांतिक मुद्दों को उठाया गया है जिससे सामाजिक व राजनीतिक स्तर पर इन समुदायों के विकास के प्रश्नों को आसानी से सुलझाने के प्रयास सक्रिय हो पाए हैं। वंचितों के शोषण और भेदभाव के खिलाफ उठी इस मुहीम में सामाजिक-राजनीतिक आंदोलन के अलावा साहित्यिक आंदोलन ने भी बढ़ चढ़कर हिस्सा लिया। आदिवासी साहित्य, स्त्रीवादी साहित्य व दलित साहित्य उसी का प्रतिफल है। आदिवासी साहित्य में आदिवासी लोक की सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था, रीति-रिवाजों, परंपराओं, कलाओं व प्रथाओं का वास्तविक चित्रण मिलता है। साथ ही इससे आदिवासियों के शोषण की वास्तविक स्थिति भी समाज के सम्मुख उजागर हुई है जिसने आदिवासी चेतना को जागृत किया है। आदिवासी साहित्य अपनी प्रारंभिक निर्माण अवस्था में है फिर भी यह लेखन विविधताओं से भरा हुआ है। साहित्य की प्रत्येक विधा में आदिवासी चिंतन व विमर्श को स्थान मिला है। ग़ैर-आदिवासी साहित्यकार व आदिवासी साहित्यकारों ने इस दिशा में सतत प्रयास जारी रखे हैं। कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास आदि विधाओं में आदिवासी जीवन व समाज की जीवंत प्रस्तुति की गई है। आदिवासी रचनाकारों ने अपनी मौखिक साहित्य की समृद्ध परंपरा का लाभ लेते हुए इस क्षेत्र में अधिक मौलिक सृजन करने का प्रयास किया है। इन्होंने आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व के संघर्ष को अपना मुख्य हथियार बनाया है।

आदिवासी साहित्य में आदिवासी संस्कृति, दर्शन, जीवन शैली, प्रकृति और उनकी समस्याओं का सजीव चित्रण मिलता हैं। आदिवासी साहित्य स्वांत सुखाय नहीं लिखा जाता बल्कि यह प्रतिबद्ध साहित्य है और बदलाव के लिए कटिबद्ध है। आदिवासी साहित्य का स्वरूप व्यापक एवं विस्तृत है। संसार में जहाँ-जहाँ आदिम समूह रहते हैं उनसे सम्बन्धित सारा साहित्य आदिवासी साहित्य में समाविष्ट है। यह साहित्य अव्यक्त वेदना संसार का दर्शन कराने वाला व नये जागरण का उषासूक्त है। "आदिम भारत के नव निर्माण का स्वप्न बीज आदिवासी साहित्य के बहाने अंकुरित हो रहा है। पहाड़ों की गोद में और कँटीली झाड़ियों में, बस्ती-बस्ती में जिनके जीवन का हर क्षण शृंखलाबद्ध हुआ है। यह साहित्य ऐसे ही जंगलवासियों को मुक्ति की आशा दिलाने वाला है।"[6] ग़ैर-आदिवासी समाज जब आदिवासी जीवन को आधार बनाकर साहित्य रचता है तो उसके विचार एवं संस्कार के संक्रमण का भय बना रहता है। इसे मात्र अध्ययन के द्वारा समझना संभव नहीं है। इसके लिए आदिवासी समाज के साथ रहना और जीना आवश्यक है।

आदिवासी साहित्यकार डॉ. विनायक तुकाराम कहते हैं "आदिवासी साहित्य वन, संस्कृति से संबंधित साहित्य है। आदिवासी साहित्य वनों, जंगलों में रहने वाले उन वंचितों का साहित्य है जिनके प्रश्नों का अतीत में कभी उत्तर ही नहीं दिया गया। यह ऐसे दुर्लक्षितों का साहित्य है जिनके आक्रोश पर मुख्यधारा की समाज व्यवस्था ने कान ही नहीं धरे। यह गिरि-कन्दराओं में रहने वाले अन्यायग्रस्तों का क्रांति साहित्य है। सदियों से जारी क्रूर और कठोर न्याय व्यवस्था ने जिनकी सैंकड़ो पीढ़ियों को आजीवन वनवास दिया उस आदिम समूह का मुक्ति साहित्य है। आदिवासी साहित्य वनवासियों का क्षत जीवन जिस संस्कृति की गोद में छुपा रहा उसी संस्कृति के प्राचीन इतिहास की खोज है। आदिवासी साहित्य इस भूमि से प्रसूत आदिम वेदना तथा अनुभव का शब्दरूप है।"[7] प्रो. व्यंकटेश आजाम के अनुसार "जो आदिवासी जीवन से प्रेरणा लेकर लिखा हुआ है वह आदिवासी साहित्य है।"[8] कवयित्री रमणिका गुप्ता के अनुसार "आदिवासी साहित्य मैं उसी को मानती हूं जो आदिवासियों ने लिखा और भोगा है। उसे आदिवासी समस्याओं, सांस्कृतिक, राजनीतिक व आर्थिक स्थितियों तथा जीवन शैली पर आधारित होना होगा अर्थात आदिवासियों द्वारा आदिवासियों के लिए आदिवासियों पर लिखा साहित्य आदिवासी साहित्य कहलाता है।"[9]

"आदिवासी दर्शन और साहित्य की अवधारणा है सृष्टि सर्वोच्च नियामककर्ता है। संपूर्ण सजीव और निर्जीव जगत् तथा प्रकृति सबका अस्तित्व एक समान है। मनुष्य का धरती, प्रकृति और सृष्टि के साथ सहजीवी संबंध है।"[10] "आदिवासी साहित्य अस्मिता की खोज, दिकुओं द्वारा किये गये और किए जा रहे शोषण के विभिन्न रूपों के उद्‌घाटन तथा आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व के संकट और उनके खिलाफ हो रहे प्रतिरोध का साहित्य है। यह उस परिवर्तनकामी

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580|

| Volume 9, Issue 11, November 2022 |

| DOI: 10.15680/IJMRSETM.2022.0911008 |

चेतना का रचनात्मक हस्तक्षेप है जो देश के मूल निवासियों के वंशजों के प्रति किसी भी प्रकार के भेदभाव का पुरजोर विरोध करती है तथा उनके जल, जंगल, जमीन और जीवन को बचाने के हक में उनके आत्मनिर्णय के अधिकार के साथ खड़ी होती है।"[11]

इक्कीसवीं सदी के साहित्य लेखन में आदिवासी विमर्श केंद्र में है। आदिवासी विमर्श में राजनीति और सामाजिक अस्मिता दोनों का समावेश है। आदिवासी साहित्यकारों ने अपने लेखन में दर्शन और संस्कृति का वास्तविक व व्यापक चित्रण किया है जो कि उनके मौलिक मौखिक परंपराओं पर आधारित है। जबकी ग़ैर-आदिवासी रचनाकारों में आदिवासी साहित्य रचना के नाम पर प्रतिस्पर्धा हो रही है। उनके द्वारा आदिवासी संस्कृति, जीवन और समाज पर जो साहित्य रचा जा रहा है वह प्रचारित, पाठित और वाचिक ही अधिक माना जा सकता है क्योंकि ग़ैर-आदिवासी साहित्यकार आदिवासियों की समस्याओं को आर्थिक संघर्ष के रूप में ही अधिक देखता है। सांस्कृतिक तौर पर आदिवासी दर्शन व संस्कृति को बचाने व उनके ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने के प्रयास कम ही किए जा रहे हैं।

आदिवासी साहित्य को समझने के लिए आदिवासियों की जीवन परंपरा, रीति-रिवाज व सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था को समझना आवश्यक है जो कि अत्यधिक समृद्ध है। आदिवासी जीवन और समाज किसी भी प्रकार के शास्त्रीय बंधनों को स्वीकार नहीं करता। आदिवासियों की वास्तविक स्थिति, शोषण व संघर्ष को देखने व समझने के लिए इसकी अंतर्वस्तु एवं स्वरूप को समझना आवश्यक है। आदिवासी साहित्य में कौन और क्या-क्या समाहित है इसका उत्तर जानना आवश्यक है। आदिवासी साहित्य आदिवासी साहित्यकारों द्वारा लिखा गया वह साहित्य है जिसमें आदिवासी संस्कृति, दर्शन, जीवन शैली, प्रकृति और उनकी समस्याओं का चित्रण हो।

"आदिवासी साहित्य जीवन का साहित्य है। वह प्रकृति का सहयोगी, सहअस्तित्व का अभ्यस्त, ऊँच-नीच, भेदभाव व छल कपट से दूर है। वह जमाखोरी या सम्पत्ति जुटाने की भावना से मुक्त है। वह अन्याय का विरोधी और सामाजिक न्याय का पक्षधर है। उसके साहित्य में इन्हीं सबकी अभिव्यक्ति है। जीवन की समस्याएँ और प्रकृति से लगाव उसके साहित्य का आधार है।"[12]

आदिवासी साहित्य जनवादी साहित्य है। इसमें आदिवासी जीवन से संबंधित प्रत्येक विशेषताएँ, मान्यताएँ, लोककथाएँ, मिथक, लोकविश्वास, आदिवासियों की प्रकृति, आदिवासियों का अस्तित्व, आदिवासियों का अन्य मानवेतर प्राणियों के साथ सहअस्तित्व, सामूहिकता की भावना, आदिवासी संस्कृति, नृत्य, गीत, संगीत, आदिवासियों की समस्याएं, आदिवासियों की स्वतंत्रता, जल, जंगल तथा ज़मीन विषयक दृष्टिकोण, अपनी मातृभाषा के प्रति लगाव आदि आदिवासी के बुनियादी तत्त्व हैं जो दर्शन के अंतर्गत समाहित किये जा सकते हैं। इन तत्त्वों को जिस साहित्य में समाहित किया जाता है वह साहित्य आदिवासी साहित्य है।

हिंदी साहित्य में विभिन्न आदिवासी तथा ग़ैर-

आदिवासी साहित्यकारों जैसे-सुशीला सामंत, वंदना टेटे, दुलाय चंद मुंडा, रामदयाल मुंडा, बलदेव मुंडा, वाहरू सोनवने, रोजकेरकेट्टा, हरिराम मीणा, एलिस एक्का, शंकर लाल मीणा, पीटर पौल, वाल्टर भेंगरा, मंजू ज्योत्सना, मंगल सिंह मुंडा, बाबूलाल मुर्मू आदिवासी, शिशिर टुडु, महादेव टोप्पो, महादेव हांसदा, निर्मल मिंज, दयामनी बारला, सुषमा असुर, लक्ष्मण गायकवाड़, शंकर लाल मीणा, मंगल सिंह मुंडा, रमणिका गुप्ता, रणेन्द्र, संजीव, निर्मला पुतुल, राकेश कुमार सिंह आदि ने आदिवासी साहित्य की प्रत्येक विधा पर कलम चलाई है।

आदिवासी साहित्य में मूल स्वर विद्रोह का होता है परंतु इसके साथ ही आदिवासी जीवन की वेदना, संवेदना, आकांक्षा और संभावना को भी साहित्यकार अपने साहित्यिक कृति में अभिव्यक्त करता है। आदिवासी साहित्य केवल आदिवासियों के प्रति सहानुभूति का साहित्य नही है यह तो आदिवासियों के जीवन संघर्ष से प्रेरित है। आदिवासी साहित्य से आदिवासी लोगों में चेतना जागृत हुई है। आदिवासी अपने अधिकारों के प्रति सजग हुये हैं। आदिवासी साहित्य आदिवासी समाज के प्रति नवीन दृष्टिकोण विकसित करता है तथा आदिवासी संस्कृति को बचाए रखने में सहयोग देता है। यह आदिवासियों के समक्ष उपस्थित समस्याओं जैसे आर्थिक शोषण, विस्थापन, स्वास्थ्य, गैर आदिवासी समाज के हस्तक्षेप से उत्पन्न समस्या आदि से परिचय करवाता है। आदिवासी साहित्य अस्तित्व और अस्मिता की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580|

| Volume 9, Issue 11, November 2022 |

| DOI: 10.15680/IJMRSETM.2022.0911008 |

साहित्य है। आदिवासी समाज अपने हितों व
अस्तित्व के लिए लड़ाई वर्षों से लड़ता आ रहा है परंतु कोई विमर्श तभी विमर्श बनता है जब सभ्यता, संस्कृति, भाषा व क्षेत्र की अस्मिता की पहचान हाशिए पर चली जाए। आदिवासी विमर्श आदिवासी साहित्य
में आदिवासियों के अस्तित्व की रक्षा व जीवन जीने के अधिकार की पैरवी करता है। 'साहित्य समाज का दर्पण है' का प्रचार-प्रसार तो काफी हुआ लेकिन आदिवासी चिंतन के सन्दर्भ में इस सिद्धान्त की परिणति व्यावहारिक रूप में नहीं हुई। विवेचनात्मक रूप से आदिवासी समाज जितना उपेक्षित रहा उतना उनका साहित्यिक विमर्श भी। इसलिए आदिवासी साहित्य को आदिवासी समाज व संस्कृति के धरातल पर विकसित व परिमार्जित करने की आवश्यकता है।

विचार-विमर्श

आदिवासी समाज भारतीय सभ्यता व संस्कृति को वैश्विक परिदृश्य पर प्रस्तुतकर्ता जनजातीय समाज है जिसने लोक संस्कृति व जीवन को बनाए एवं बचाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आज
इसी सभ्यता व संस्कृति की पहचान के लिए उसे सरकार व मुख्यधारा से संघर्ष करना पड़ रहा है। जिससे आदिवासी विमर्श की आवश्यकता ने जन्म लिया और साहित्य के क्षेत्र में एक नई विधा आदिवासी साहित्य की आवश्यकता महसूस हुई। आदिवासी वर्ग के उत्थान, जीवन परंपरा व सभ्यता को बनाये रखने के लिए उनमें फैले विषाक्त अंधविश्वास, जड़ता से उनके जीवन को बाहर निकालने की महती आवश्यकता है। साथ ही उनके अधिकारों व आधुनिक सभ्यता, संस्कृति से उन्हें परिचित करवाना आवश्यक है। आदिवासी साहित्य वर्तमान समय की आवश्यकता है इसीलिए इसकी प्रत्येक विधा पर आदिवासी साहित्यकारों द्वारा लेखन किया जा रहा है जिससे वे स्वयं अपनी सामाजिक-
आर्थिक व शैक्षणिक परिस्थिति से अवगत हो सकें तथा अपने शोषण के विरुद्ध आवाज उठाकर अपने विकास की ओर अग्रसर हो सकें। [13]

आदिवासी साहित्य आदिवासी समाज व संस्कृति संरक्षण में नींव
का प्रस्तर है। राष्ट्र निर्माण की नीतियों में जल, जंगल, ज़मीन से बेदखल कर इनके अस्तित्व का जो संकट खड़ा हुआ है उसे सरकार द्वारा इनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति व शैक्षणिक स्तर में सुधार कर समायोजित किया जा सकता है। आदिवासी साहित्य द्वारा ही आदिवासी विमर्श और चिंतन को विस्तृत किया जा सकता है। आदिवासी साहित्य का महत्त्व इस कारण भी बढ़ जाता है कि आदिवासी साहित्य आदिवासियों को सम्मान से जीने, उन्हें अपनी पहचान बनाने, अपनी लड़ाई खुद लड़ने, अपने हक तथा अधिकारों के लिए लड़ने, अपने संगठन को बचाये रखने के लिए प्रेरित करता है।
आदिवासी साहित्य आदिवासी समुदाय की अस्मिता, संस्कृति तथा संघर्ष के लिए नवीन
चेतना जागृत करता है तथा यह साहित्य आदिवासियों को उनके अधिकारों के प्रति सजग कर उनके अस्तित्व को प्रकट करता है।[14,15]

परिणाम

आज विकास की इस घुड़दौड़ ने मानवीय मूल्यों और अपने अतीत में व्यतीत किए हुए उन क्षणों को भूलता जा रहा है। किसी भी समाज का अतीत बहुत महत्वपूर्ण होता है क्योंकि चेतना का संचार और आत्म गौरव की प्रतिष्ठा का विकास उसी से होता है। इसका तात्पर्य नहीं लिया जाना चाहिए ,शुद्ध अतीतवादी होने में तार्किक एकता नहीं हो सकती है और आधुनिक होने में भी तार्किकता नहीं हो सकती है। दोनों अपने समय और परिस्थितियों के आधार पर मनुष्य द्वारा विकास के पैमाने को प्रतिष्ठित करने के लिए इन शब्दों को विभिन्न रूप से विलक्षण शब्दावली के साथ गढ़ा गया है।

आदिवासी संस्कृति (Tribal Culture) और समाज एक ऐसा समाज है जो अपने आत्म सम्मान और गौरव के लिए जाना जाता है एक ऐसा समाज जिसमें परिवर्तन तो होता है ,परंतु वह सांस्कृतिक मूल्यों के साथ किसी भी रूप में समझौता नहीं करते। उनकी संस्कृति और सभ्यता की एक अमिट छाप जो किसी को भी आकर्षित करने , सीखने और सिखाने के लिए उत्प्रेरित करती है। परंतु यह भी विवाद का विषय है कि आखिरकार मुख्यधारा वाला व्यक्ति किसे माना जाए क्या आज पूंजीवादी और उपभोक्तावादी आधुनिकता की घुड़दौड़ वाली जिंदगी को मुख्यधारा वाला माना जाए [16,17] या प्रकृति के सुरम्य वातावरण में निवास करने वाले उस मनुष्य को मुख्यधारा वाला व्यक्ति माना जाए जो सदैव कर्मशील और आत्मसम्मान से ऊर्जावान होता है।

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580|

| Volume 9, Issue 11, November 2022 |

| DOI: 10.15680/IJMRSETM.2022.0911008 |

आज विकास के नाम पर उनके कई प्रकार की पहचानों और संस्कृति को नष्ट किया जा रहा है।आदिवासी समाज में कई प्रकार की रीति रिवाज और कथाएं प्रचलित होती हैं, परंतु एक बार जो उन सबमें स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है ।वह है प्रकृति प्रेम। यद्यपि , आदिवासी समाज प्रकृति पर निर्भर है फिर भी वह प्रकृति का दोहन सिर्फ इतना करता है कि हमारे आगे आने वाली पीढ़ी को भी समस्या का सामना ना करना पड़े ??। शायद ! सतत विकास की प्रक्रिया आधुनिक मनुष्य ने उसी से सीखी होगी। उनका एक लंबा गौरव और इतिहास है ?। जिसमें उनके योगदान को स्वतंत्रता के समय और स्वतंत्रता के बाद के समय के रूप में बस नहीं देख लेना चाहिए।

संरक्षित संस्कृति और अपने मूल्यों से समझौता न करने वाले समाज के रूप में भी उन्हें देखे जाने की आवश्यकता है। आज तथाकथित मुख्यधारा वाली समाज यह सरकारें उनके विकास के लिए एवं विकसित करने के लिए करोड़ों अरबों रुपए खर्च कर रहे हैं। यह तो उचित प्रतीत होता है परंतु उनके प्राकृतिक संसाधनों का दोहन और व्यापक संख्या में उनका पुनर्वास यहां नया प्रश्नचिन्ह खड़ा हो जाता है। उनकी समाजों में कई प्रकार की ऐसे रीति रिवाज प्रचलित हैं जो आधुनिक दृष्टिकोण से ठीक नहीं लगते, परंतु उसके पीछे भी तार्किकता है और एक ऐसी जीवन शैली है जिसको विचार और मंथन किए जाने की आवश्यकता है।

जैसे- फसल तैयार हो जाती है तो एक आदिवासी समाज (Tribal Culture) में यह चलन है कि पहली फसल का दाना एक चबूतरे में एकत्रित होकर उसको पहले पूजा या प्रतिष्ठान करते हैं। इसके बाद ही उपयोग करते हैं। मध्यप्रदेश में और छत्तीसगढ़ में ऐसी बहुत सी जनजातियां है ।जो इस बात के लिए जानी जाती है कि भटके हुए व्यक्तियों को जंगल का सही रास्ता दिखाती है और उनके अधिक भटकाव को कम करते हैं साथ ही अपने निजी प्रबंधन के द्वारा उनको घर तक पहुंचाने की जिम्मेदारी में उठाते हैं।

आज जब औद्योगिक विकास के लिए खनिज सम्पदा और जंगल-पहाड़ के इलाके राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था के लिए अनिवार्यत: उपयोगी माने जा रहे हैं और ये सारी सहूलियतें इन्हीं आदिवासी अंचलों में सुलभ हैं तो क्या क्षेत्रीय या राष्ट्रीय हितों के लिए 10 प्रतिशत आदिवासियों को विस्थापित कर उनकी अपनी जीवन शैली, समाज- संरचना, सांस्कृतिक मूल्यों में बलात वंचित कर किया जाए? यानी आज यह सर्वोपरी आवश्यकता दिख रही है कि विकास की मौजूदा अवधारणा की एक बार फिर समीक्षा की जाए और नई आधुनिक व्यवस्था में जनजातीय समूहों के मानवीय अधिकारों की समुचित अभिरक्षा की जाए।

तभी जनजातीय संस्कृति या उसकी परंपरा के विषय में हमारी चिंता को एक वास्तविक आधार सुलभ होगा। अन्यथा की स्थिति में इस उपभोक्तावादी समाज में उनके सांस्कृतिक मूल्य और जीवन शैली की पहचान को क्षति पहुंचेगी। बहुत से आदिम कबीलों में विवाह -विच्छेद और पुनर्विवाह का नियम है। इस संबंध में प्राय: स्त्री और पुरुषों के समान अधिकार होते हैं, क्योंकि बहुत से समुदाय ऐसे हैं, जिनमें लड़का और लड़की को समान रूप से एक दूसरे को चुनने का समान अधिकार होता है। कई आदिवासी समुदायों में मातृसत्तात्मक प्रथा है तो कई समुदायों में पितृसत्तात्मक- बावजूद इसके भी दोनों को समान अधिकार होता है।

मध्य भारत में कुछ समुदायों में 'घोटुलÓ जैसी प्रथा प्रचलित है। इनमें प्राय: दहेज प्रथा जैसी आधुनिक समस्याओं का चलन नहीं है। भारत की जनसंख्या का लगभग 8.6त्न (10 करोड़) एक बड़ा भाग आदिवासियों का है। आज पूरे दुनिया में लगभग 90 देशों में 47.6 करो मूलनिवासी रहते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा भी इनकी संस्कृत के संरक्षण के लिए प्रत्येक वर्ष कुछ विषय रखकर खास दिवस और त्योहार मनाने के लिए प्रेरित किया जाता है। आदिवासी भारतीय अर्थव्यवस्था को कई आधार पर मजबूत रखते हैं।

साथ ही आम नागरिकों के उन कई प्रकार की आवश्यक वस्तुओं को जुटाने का काम करते हैं जो बहुत ही जीवन के लिए उपयोगी है। भारतीय संविधान के भाग 8 में संथाली और बोडो दो आदिवासी भाषाओं को रखा गया है। संविधान के अनुच्छेदों में उनके लिए आरक्षण एवं अपनी पहचान को सुनिश्चित करने का अधिकार प्रदान किया गया है। इतने अधिकार, योजनाओं और परियोजनाओं के पश्चात भी आज उनकी स्थिति में इतना बदलाव क्यों नहीं हुआ जितने की अपेक्षा की गई थी? कई प्रकार की नीतियों और लाभों से वंचित कैसे रह गए?

यही कारण है कि उनमें कई प्रकार के असंतोष जन्म ले रहें हैं जिसका कारण उनके संपूर्ण अधिकार और योजनाओं का पूर्णतया लाभ ना मिल पाना ही हो सकता है। उनके संस्कृति को और पहचान हो संरक्षण देने की आवश्यकता नहीं है। इतने संबल है कि अपने मूल्यों को संरक्षित कर सकते हैं।[18]

भाषा में लोक की ज्ञान-संपदा, संस्कृति, कला-शिल्प, गीत, संगीत, साहित्य तथा मानव विकास के चरण व उनका अनुभव- संसार स्वाभाविक रूप से संचित होता है। इसलिए किसी भी विशिष्ट समाज की मातृभाषा उसके लोकमानस में मौलिक दृष्टि और समझ विकसित करने में सर्वाधिक सहयोग करती है। उत्तरआधुनिक काल में विविध वैमर्शिक आंदोलनों ने हाशिए के लोगों में उस चेतना का बीजारोपण किया, जिससे वे अपनी अस्मिता की रक्षा के साथ सम्मानजनक उपस्थिति दर्ज करा सकें। स्त्री, दलित, आदिवासी, तृतीय लिंगी समुदायों की उपस्थिति को इसी दृष्टि ने अपने अधिकारों के प्रति सचेत किया। किन्तु इन वंचित वर्गों में आदिवासी समुदायों की

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580|

| Volume 9, Issue 11, November 2022 |

| DOI: 10.15680/IJMRSETM.2022.0911008 |

सर्वथा भिन्न पहचान रही है। उनका जीवन-दर्शन, संस्कृति, पुरखा साहित्य कथित मुख्यधारा से अलग विचार को पोषित करता है। सृष्टि व प्रकृति के साथ सहजीविता का विचार अर्थात् मानव अस्तित्व के साथ जीव-जंतु, पहाड़, नदियों, जल, जंगल, जमीन के स्वाभाविक सहअस्तित्व को केन्द्र में रखकर विकसित जीवन-शैली का अनुकरण करने वाले आदिवासी समूह वस्तुतः एक अत्यंत उदार और व्यापक विचार दृष्टि को अपनाते हैं। जो आदिवासी समूह स्वाभाविक रूप से जंगल और प्रकृति के सान्निध्य में जीवनयापन करते हुए पर्यावरण के अद्वितीय संरक्षक के रूप में सम्मुख आते हैं, उन्हें कथित मुख्यधारा द्वारा स्थापित जीवन व्यवस्था में प्रवृत्त करने को ही उनका विकास मान लिया जाना विचारणीय है।

आदिवासी समुदाय का प्रकृति, जीवन विषयक परंपरागत ज्ञान व पुरखा साहित्य उनकी मूल भाषाओं में संचित है। किन्तु मुद्रण, टंकण की समस्या, रोजगार का अभाव, सरकारी संरक्षण की उदासीनता जैसे कई कारणों से भारत की आदिवासी भाषाएँ विलुप्ति के संकट का सामना कर रही है। ''औपनिवेशिक समय में अंग्रेजी और स्वतंत्रता के बाद हिंदी इन दोनों ही भाषाओं का रिश्ता आदिवासी समाज के साथ सम्मानजनक और न्याय पूर्ण नहीं रहा है। इन भाषाओं के जरिए एक ऐसी राजनीति और संस्कृति हम पर हमलावर रही है। जिसके चलते आज देश की 198 भाषाएँ जिनमें से अधिकांश आदिवासी भाषाएँ है, खत्म हो जाने के कगार पर पहुँच गई हैं। इनमें से सात झारखंड की आदिवासी भाषाएँ हैं- हो, खड़िया, कुडुख, मुंडारी, मलतो, बिरहोरी और असुरी। यह अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण हैं कि भारतीय संविधान जहाँ आदिवासी अस्मिता, स्वशासन, रीति-रिवाज, भाषा, संस्कृति की रक्षा के लिए संकल्पबद्ध है वहीं हमारे राज्य और देश नहीं।' यहाँ स्थापित विचार है कि मातृभाषा में शिक्षा व्यक्ति के स्वाभाविक विकास का प्रथम चरण है। मध्यप्रदेश में अत्यंत पिछड़े सहरिया आदिवासी समुदाय को विलुप्ति के संकट से बचाने तथा उन्हें शिक्षित करने का जब प्रयास किया गया तो यह देखने में आया कि उनके बच्चे हिंदी में दी जाने वाली शिक्षा से स्वयं को जोड़ नहीं पा रहे हैं। किन्तु जैसे ही उनकी मूल भाषा में अध्यापन की व्यवस्था की गई, वे शिक्षा के साथ धीरे-धीरे जुड़ने लगे। यह छोटा सा उदाहरण दर्शाता है कि मातृभाषा से जुड़ाव एक बालक को शिक्षा देने का सबसे सहज माध्यम बन सकता है।

आदिवासी भाषाओं का संरक्षण उनके संचित ज्ञान और संस्कृति के संरक्षण तथा स्वाभाविक विकास की नींव तैयार करता है। आदिवासी समुदाय को उनकी जीवनचर्या और विचार से विच्छिन्न करके यदि मुख्यधारा के भौतिक विकास को ही उनका विकास मान लिया जाए तो यह कई तरह के प्रश्नचिह्न खड़े करता है। यह ध्यान रखना होगा कि संताली को संविधान की आठवीं सूची में शामिल करने से इसका लाभ संताली समाज को मिला है। झारखण्ड में राज भाषा का दर्जा प्राप्त 8 भाषाओं मुंडारी, हो, खड़िया, कुडुख, नागपुरी, खोरठा, पंचपरगनिया, कुरमाली मे ंप्राथमिक शिक्षा दिए जाने का निर्णय वहाँ के आदिवासी समुदाय को आगे ले जाने का महत्वपूर्ण कदम है।2 आज झारखंड के कई आदिवासी रचनाकार अपनी मूल भाषा के साथ हिन्दी में भी कहानी, उपन्यास और कविताएँ लिखकर अपनी महत्त्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज करा रहे हैं। यह स्थिति मध्यप्रदेश की आदिवासी भाषाओं से कहीं बेहतर है। यह भी देखा गया है कि मध्यप्रदेश की आदिवासी भाषा और पुरखा-साहित्य पर कथित मुख्यधारा की संस्कृति का प्रभाव पड़ने से उन आदिवासी भाषाओं के स्वतंत्र वैशिष्ट्य पर प्रभाव पड़ा है। आदिवासी समाज की शिक्षा में उनकी भाषा के साथ उनके सांस्कृतिक वैशिष्ट्य को सम्मिलित करने से उत्पन्न जुड़ाव उन्हें शिक्षा की ओर आकर्षित करने में सक्षम और उनके सर्वांगीण विकास की राह प्रशस्त करने में सहायक है।

वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था और लादी गई भाषा से आदिवासी समुदाय का समुचित विकास संभव नहीं है। यह स्थिति हिंदी और वर्तमान शिक्षा प्रणाली के विषय में भी विचारणीय है। ' ' एक तरफ मातृभाषाओं की नाकाबिलियत का सतत् अहसास और दूसरी ओर शिक्षा के माध्यम के रूप में पराई भाषा के व्यवहार ने हमें एक अजब तरीके से दुविधाग्रस्त बना दिया । यह दुविधाग्रस्तता हमारी शिक्षा व्यवस्था को खोखला करती जा रही है। गगगग देशज भाषाओं में मौजूद पारंपरिक ज्ञान की अवहेलना और मौलिक ज्ञान के सृजन में विफलता के नाते शिक्षा प्रणाली लगातार प्रश्नांकित हुई । जिस शिक्षा व्यवस्था पर मौलिक दृष्टि मूल्य संवर्धन और रोजगार संबंधी कई सवाल उठाए जा रहे हो उसको आदिवासी समुदाय पर लादना उन्हें सांस्कृतिक दृष्टि से विपन्न करना है । आदिवासी समुदाय के लिए उनकी मातृभाषा में शिक्षा के पक्ष में यह विचार भी उल्लेखनीय है ...'' (यहा) भाषाई स्तर पर पूरी सोच का अंतर है। ऐसे हमारी मुख्यधारा की भाषाएँ कहीं दलित बन जाती है तो कहीं सवर्ण ! कहीं सर्वहारा है तो कहीं कारपोरेट जगत की उद्घोषक। दरअसल यह भाषाएँ वर्चस्ववादी प्रवृत्ति की पोषक हैं और उपनिवेशवाद का हथियार भी हैं। अंग्रेजी विदेशी उपनिवेशवाद का हथियार है तो हिंदी या क्षेत्रीय भाषाएँ आदिवासी क्षेत्रों के आंतरिक उपनिवेशवाद का औजार है । इसलिए उनमें शासन सत्ता की गंध भरी है- भाई चारे की महक कम है।'

यह विचारणीय है कि विकास की जिस अवधारणा को कथित मुख्यधारा ने आत्मसात किया है क्या वह वास्तव में समूची सृष्टि और प्राणिजगत के लिए हितकारी है! इस पर विचार किए बिना सह-अस्तित्व और सहजीवी दर्शन को जीने वाले आदिवासी समुदायों को ठेलकर इस ओर लाना कहाँ तक औचित्यपूर्ण है। क्या कभी किसी आदिवासी से पूछा गया है कि वह क्या

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580|

| Volume 9, Issue 11, November 2022 |

| DOI: 10.15680/IJMRSETM.2022.0911008 |

चाहता है! या वर्चस्ववाद की मनोवृत्ति के श्रेष्ठताबोध ने स्वयं ही यह तय कर लिया है कि वह श्रेष्ठता अंतिम विचार है और हाशिए के समाज को उसमें सम्मिलित करके वह अपनी उदारता और संवेदनशीलता का उदाहरण प्रस्तुत कर रहा है। 2010 के नोबेल पुरस्कार से सम्मानित लेखक 'मारियो वार्गास ल्योसा' के उपन्यास 'एल आब्लादोर' (हिंदी अनुवाद - किस्सागो) का यह संवाद कई प्रश्न उत्पन्न करता है-'' क्या हमारी कारें, बंदूके, जहाज और कोकाकोला हमें अधिकार देते हैं कि हम उन्हें खत्म कर डालें क्योंकि उनके पास ये तमाम वस्तुएँ नहीं है या कि तुम 'जंगलियों को सभ्य बनाने में विश्वास करते हो, दोस्त ? कैसे ? उन्हें सैनिक बनाकर ? या उन्हें फिदल परेरा की तरह क्रिओल के खेतों में बंधुआ मजदूर बनाकर ? उन्हें अपनी भाषा, धर्म, रीति-रिवाज बदलने को मजबूर करके जैसा कि मिशनरी करने की कोशिश कर रहे हैं? इस सब से क्या मिलेगा? सिर्फ इतना ही ना कि हम उनका दोहन आसानी से कर सकेंगे। ऐसा करके हम उन्हें मानव जाति के चलते फिरते विद्रूप में बदल देंगे।' ' 5 यह उपन्यास आदिवासी संस्कृति के उस सार्वभौमिक वैशिष्ट्य को भी रेखांकित करता है जिस को आधार बनाकर उनके प्रति विचार दृष्टि को नियत किए जाने की जरूरत है।उनकी जीवन चर्या को कौन सी चीज संतुलित करती थी- प्रकृति के प्रति एक ऐसी दृष्टि, जो उसे इन संस्कृतियों का एक अद्वितीय गुण लगता था। यह एक ऐसी चीज थी जो सभी आदिवासियों में तमाम विभिन्नताओं के बावजूद समान रूप से पायी जाती थी। उस दुनिया की गहरी समझ, जिसमें वे आद्योपांत डूबे थे, एक ऐसी समझ जो अनंत काल से चले आ रहे रिवाजों, संस्कारों, निषेधों, भय, नित्य कर्मों के गझिन जाल के रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होती आई थी। ये आदिवासी आज तक इसलिए बचे हुए हैं क्योंकि उन्होंने अपनी आदतों, रीति रिवाजों को प्रकृति की लय के साथ एकात्म कर लिया हैं, उसके प्रति बिना हिंसा किए, उसमें बिना कोई विचलन पैदा किए, उसे जीवित रहने के लिए जो कम से कम जरूरी है उतना भर लेकर । ताकि पलटकर वह उन्हें ही नष्ट न कर डाले। उससे बिल्कुल उलट जो आज हम सब लोग कर रहे हैं, उन तत्वों को आमूलचूल नष्ट करते हुए जिनके बिना हम वैसे ही नष्ट हो जाएँगे जैसे बिना पानी के फूल सूख जाता है।' ' 6 निश्चित ही उक्त पंक्तियाँ स्पष्ट करती हैं कि आदिवासी समुदाय की शिक्षा का विचार उनकी भाषा में, उनकी सहभागिता और विचारों को प्राथमिकता देकर ही उनके अस्तित्व व अस्मिता की रक्षा हो सकती है। जबकि हमारी विकास की अवधारणाओं के निर्माण में उनकी उपस्थिति व विचार, दर्शन को महत्त्व देने की प्रवृत्ति न्यूनतम है।

आदिवासी संस्कृति, गीत, संगीत, नृत्य व वेशभूषा को बाजारवाद ने प्रदर्शन की वस्तु बना दिया है। आदिवासी संस्कृति व कला के नाम पर उनके भौतिक प्रदर्शन से इस संस्कृति को क्या उपलब्ध हुआ है, यह भी बड़ा प्रश्न है। हाँसदा सौभेंद्र शेखर की कहानी 'आदिवासी नहीं नाचेंगे' का एक पात्र मंगल मुर्मू विशिष्ट आयोजन में नृत्य के लिए इंकार करते हुए कहता है-'' मैंने सिर्फ इतना कहा, हम आदिवासी अब और नहीं नाचेंगे - इसमें क्या गलत है ? हम खिलौनों की तरह है- कोई हमारा ऑन का बटन दबाता है या पीछे की चाभी घुमाता है और हम संथाल हमारे टामाक् और तुमदाक् पर संगीत बजाने लगते हैं या हमारे तिरियों पर धुन बजाने लगते हैं जबकि कोई हमारे नाचने की जमीन ही छीन लेता है । मुझे बताएँ क्या मैं गलत हूँ ?' उपर्युक्त पंक्तियाँ एक आदिवासी समुदाय के जल, जंगल, जमीन से विस्थापन, सांस्कृतिक उच्छेदन, प्रदर्शन की वस्तु बन जाने की पीड़ा का बयान है। ऐसे बयान उनके लिए बनाई जाने वाली तमाम नीतियों के निर्माण में आधारभूत विचार के रूप में प्रयुक्त किए जाने की जरूरत है। आदिवासी कला, शिल्प, संगीत, गीत, नृत्य को प्रदर्शन मात्र की वस्तु बना दिए जाने की पीड़ा के पीछे उनके गंभीर तर्क भी हैं - ''हमारे सारे सर्टिफिकेट और शील्ड, उन्होंने हमें क्या दिया ? दिकू बच्चे स्कूल और कॉलेज जाते, शिक्षा और नौकरी पाते हैं। हम संतालों को क्या मिलता है ? हम संथाल गा सकते हैं, नाच सकते हैं और हम अपनी कला में अच्छे हैं। फिर भी हमारी कला ने हमें क्या दिया है ? विस्थापन, तपेदिक । '' वस्तुतः कथित मुख्य धारा द्वारा आदिवासी कला का दोहन उन्हें पीड़ा पहुंचाता है। आदिवासी समुदाय अपनी संस्कृति, भाषा, कला के प्रति समर्पित रहते हैं उदाहरण के लिए, पूर्वोत्तर राज्यों के आदिवासी समूह सांस्कृतिक धरोहर की रक्षा हेतु सदैव सजग रहे हैं। उनके विविध प्रदर्शनों में सांस्कृतिक गीत, संगीत और वाद्य यंत्रों का सार्थक प्रयोग और उनकी प्रतिरोध की संयमित शैली इस सांस्कृतिक विरासत का सुंदर नमूना प्रदर्शित करती है। अतः आदिवासी शिक्षा तथा विकास के विचार में उनकी संस्कृति, दर्शन, भाषा को आधार बनाए जाने की आवश्यकता स्पष्ट है। इसकी जरूरत इसलिए भी है क्योंकि कथित स्थापित सभ्य समाज के इनके प्रति गहरे पूर्वाग्रह है। भारतीय समाज के मध्य वर्ग के मानस में बैठी छवि से इसे समझा जा सकता है।

आदिवासी समाज में जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के अतिरिक्त उपभोक्तावादी प्रवृत्ति नहीं है। इसलिए विकास के स्थापित मानदंडों के बीच आदिवासी संस्कृति, मनोविज्ञान को समझने की जरूरत है। उनके पास सुदृढ़ सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक व्यवस्था रही है तथा उनका धार्मिक ढांचा सर्वथा भिन्न प्रकृति पर आधारित है। बाह्य हस्तक्षेप ने उनकी समूची जीवन व्यवस्था को प्रभावित या खंडित किया है। अतः आदिवासी समाज की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक संरचना और मान्यताओं के गहन विश्लेषण व आदिवासी सहभागिता के साथ ही उनके जीवन में बदलाव तय किए जाने की आवश्यकता है।

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580|

| Volume 9, Issue 11, November 2022 |

| DOI: 10.15680/IJMRSETM.2022.0911008 |

निष्कर्ष

20वीं सदी के आखिरी दशकों में भारत में नए सामाजिक आंदोलनों का उभार हुआ। स्त्रियों, किसानों, दलितों, आदिवासियों और जातीयताओं की 'नई'एकजुटता ने ऐसी मांगें और मुद्दे उठाए जो स्थापित सैद्धांतिक व राजनीतिक मुहावरों के माध्यम से आसानी से समझे और सुलझाए नहीं जा सकते थे। इन अस्मिताओं ने अपने साथ होने वाले शोषण के लिए अपनी खास अस्मिता को कारण बताया और उस शोषण तथा भेदभाव से संघर्ष के लिए उस संबंधित अस्मिता/पहचान को धारण करने वाले समूह/समुदाय को अपने साथ लेकर अपनी मुक्ति के लिए सामूहिक अभियान चलाया। चूंकि इस प्रक्रिया में शोषण और संघर्ष का आधार अस्मिताएं हैं, इसलिए इसे अस्मितावाद की संज्ञा दी गई। वंचितों के शोषण के खिलाफ उठ खड़ी हुई मुहिम में सामाजिक-राजनीतिक आंदोलन के अलावा साहित्यिक आंदोलन ने भी बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया है। स्त्रीवादी साहित्य और दलित साहित्य उसी का प्रतिफल है। अब आदिवासी चेतना से लैस आदिवासी साहित्य भी साहित्य और आलोचना की दुनिया में अपनी उपस्थिति दर्ज करा चुका है।आदिवासी लोक में साहित्य सहित विविध कला-माध्यमों का विकास तथाकथित मुख्यधारा से पहले हो चुका था लेकिन वहां साहित्य सृजन की परंपरा मूलत: मौखिक रही। जंगलों में खदेड़ दिए जाने के बाद भी आदिवासी समाज ने इस परंपरा को अनवरत जारी रखा। ठेठ जनभाषा में होने और सत्ता प्रतिष्ठानों से दूरी की वजह से यह साहित्य आदिवासी समाज की ही तरह उपेक्षा का शिकार हुआ। आज भी सैकड़ों देशज भाषाओं में आदिवासी साहित्य रचा जा रहा है, जिसमें से अधिकांश से हमारा संवाद शेष है।

समकालीन आदिवासी साहित्य आंदोलन के ऐतिहासिक-भौतिक कारण हैं। दो दशक पूर्व भारत की केंद्रीय सरकार द्वारा शुरू की गई आर्थिक उदारीकरण की नीति ने बाजारवाद का रास्ता खोला। मुक्त व्यापार और मुक्त बाजार के नाम पर मुनाफे और लूट का खेल आदिवासियों के जल, जंगल और जमीन से भी आगे जाकर उनके जीवन को दांव पर लगाकर खेला जा रहा है। आंकड़े गवाह हैं कि पिछले एक दशक में अकेले झारखंड राज्य से 10 लाख से अधिक आदिवासी विस्थापित हो चुके हैं। इनमें से अधिकांश लोग दिल्ली जैसे महानगरों में घरेलू नौकर या दिहाड़ी पर काम करते हैं। विडंबना यह है कि सरकार के अनुसार राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली में मूलत: कोई आदिवासी नहीं है, इसलिए यहां की शिक्षण संस्थाओं और नौकरियों में आदिवासियों के लिए आरक्षण या कोई विशेष प्रावधान नहीं है। विकास के नाम पर अपने पैतृक क्षेत्रों से बेदखल किए गए ये लोग जाएं तो कहां जाएं ? यह दुखद है कि जब संयुक्त राष्ट्र संघ ने वर्ष 1993 को 'देशज लोगों का अंतर्राष्ट्रीय वर्ष'के रूप में मनाने का फैसला किया तो भारत सरकार की प्रतिक्रिया थी- 'संयुक्त राष्ट्र द्वारा परिभाषित इंडिजिनस लोग भारतीय आदिवासी या अनुसूचित जनजातियां नहीं हैं, बल्कि भारत के सभी लोग देशज लोग हैं और न यहां के आदिवासी या अनुसूचित जनजाति किसी प्रकार के सामाजिक, राजनीतिक या आर्थिक पक्षपात के शिकार हो रहे हैं।'दरअसल पूरा मसला आदिवासियों को आत्मनिर्णय का अधिकार देने का था, जिसकी मांग आदिवासी साहित्य में भी देखी जा सकती है। अपने जल-जंगल-जमीन से बेदखल महानगरों में शोषित-उपेक्षित आदिवासी किस आधार पर इसे अपना देश कहें ? बाजार और सत्ता के गठजोड़ ने आदिवासियों के सामने अस्तित्व की चुनौती खड़ी कर दी है। जो लोग आदिवासी इलाकों में बच गए, वे सरकार और उग्र वामपंथ की दोहरी हिंसा में फंसे हैं। अन्यत्र बसे आदिवासियों की स्थिति बिना जड़ के पेड़ जैसी हो गई है। नदियों, पहाड़ों, जंगलों, आदिवासी पड़ोस के बिना उनकी भाषा और संस्कृति तथा उससे निर्मित होने वाली पहचान ही कहीं खोती जा रही है। आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व का इतना गहरा संकट इससे पहले नहीं पैदा हुआ। जब सवाल अस्तित्व का हो तो उसका प्रतिरोध भी स्वाभाविक है। सामाजिक व राजनीतिक प्रतिरोध के अलावा कला और साहित्य द्वारा भी इसका प्रतिरोध किया गया और उसी से समकालीन आदिवासी साहित्य अस्तित्व में आया। जब-जब दिकुओं ने आदिवासी जीवन में अनावश्यक हस्तक्षेप किया, आदिवासियों ने उसका प्रतिरोध किया है। पिछली दो सदियां आदिवासी विद्रोहों की गवाह रही हैं। इन विद्रोहों से रचनात्मक ऊर्जा भी निकली, लेकिन वह मौखिक ही अधिक रही। संचार माध्यमों के अभाव में वह राष्ट्रीय रूप नहीं धारण कर सकी। समय-समय पर गैर-आदिवासी रचनाकारों ने भी आदिवासी जीवन और समाज को अभिव्यक्त किया। साहित्य में आदिवासी जीवन की प्रस्तुति की इस पूरी परंपरा को हम समकालीन आदिवासी साहित्य की पृष्ठभूमि के तौर पर रख सकते हैं। जाहिर है कोई भी साहित्यिक आंदोलन किसी तिथि विशेष से अचानक शुरू नहीं हो जाता। उसके उद्भव और विकास में तमाम परिस्थितियां अपनी भूमिका निभाती हैं। समकालीन आदिवासी लेखन और विमर्श की शुरुआत हमें 1991 के बाद से माननी चाहिए। भारत सरकार की नई आर्थिक नीतियों ने आदिवासी शोषण-उत्पीडन की प्रक्रिया तेज की, इसलिए उसका प्रतिरोध भी मुखर हुआ। शोषण और उसके प्रतिरोध का स्वरूप राष्ट्रीय था, इसलिए प्रतिरोध से निकली रचनात्मक ऊर्जा का स्वरूप भी राष्ट्रीय था। निष्कर्षत: 1991 के बाद आर्थिक उदारीकरण की नीतियों से तेज हुई आदिवासी शोषण की प्रक्रिया के प्रतिरोधस्वरूप आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व की रक्षा के लिए राष्ट्रीय स्तर पर पैदा हुई रचनात्मक ऊर्जा आदिवासी साहित्य है। इसमें आदिवासी और गैर-आदिवासी रचनाकार बढ़-चढ़कर हिस्सा ले रहे हैं। इस साहित्य का भूगोल, समाज, भाषा, संदर्भ शेष साहित्य से उसी तरह पृथक है जैसे स्वयं आदिवासी समाज, और यही पार्थक्य इसकी मुख्य विशेषता है। यह आदिवासी साहित्य की अवधारणा के निर्माण का दौर है। आदिवासी साहित्य

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580|

| Volume 9, Issue 11, November 2022 |

| DOI: 10.15680/IJMRSETM.2022.0911008 |

अस्मिता की खोज, दिकुओं द्वारा किए गए और किए जा रहे शोषण के विभिन्न रूपों के उद्घाटन तथा आदिवासी अस्मिता व अस्तित्व के संकटों और उसके खिलाफ हो रहे प्रतिरोध का साहित्य है। यह उस परिवर्तनकामी चेतना का रचनात्मक हस्तक्षेप है जो देश के मूल निवासियों के वंशजों के प्रति किसी भी प्रकार के भेदभाव का पुरजोर विरोध करती है तथा उनके जल, जंगल, जमीन और जीवन को बचाने के हक में उनके 'आत्मनिर्णय'के अधिकार के साथ खड़ी होती है। हालांकि यह समकालीन आदिवासी लेखन और विमर्श का आरंभिक दौर है लेकिन इसके बावजूद यह सुखद है कि इसमें अभी तक 'स्वानुभूति बनाम सहानुभूति'जैसी गैरजरूरी बहसें केन्द्र से दूर परिधि के इर्द-गिर्द ही घूम रही हैं। आखिर स्वानुभूति या अनुभूति की प्रामाणिकता को केंद्रीय महत्व मिले भी क्यों ? निश्चय ही अनुभूति की प्रामाणिकता की जगह अभिव्यक्ति की प्रामाणिकता अधिक महत्वपूर्ण है और होनी भी चाहिए। यह सच है कि लंबे अनुभव, निकट संपर्क और संवेदनशीलता के बिना प्रामाणिक अभिव्यक्ति संभव नहीं है, खासकर आदिवासी संदर्भ में, लेकिन इसके बावजूद स्वानुभूति को एकमात्र आधार नहीं बनाया जा सकता।[16]

चूकि आदिवासी साहित्य विमर्श अभी निर्माण-प्रक्रिया में है, इसलिए अभी इसके मुद्दे भी आकार ले रहे हैं। 'आदिवासी कौन है'से शुरू होकर आदिवासी समाज, इतिहास, संस्कृति, भाषा आदि पर पिछले एक दशक में कुछ बातें हुई हैं। हर साहित्यिक आंदोलन की शुरुआत और उसे आगे बढाने में एक या अधिक पत्रिकाओं की भूमिका होती है। साहित्य जगत में आदिवासी मुद्दों को उठाने, उनसे जुड़े सृजनात्मक साहित्य को प्रोत्साहन देने में इन पत्रिकाओं ने अहम योगदान दिया है-'युद्धरत आम आदमी' (दिल्ली, हजारीबाग. संपादक- रमणिका गुप्ता), 'अरावली उद्घोष' (उदयपुर, संपादक- बीपी वर्मा 'पथिक'), 'झारखंडी भाषा साहित्य, संस्कृति अखड़ा' (रांची, संपादक- वंदना टेटे), 'आदिवासी सत्ता' (दुर्ग, छत्तीसगढ. संपादक-केआर शाह) आदि। इनके अलावा 'तरंग भारती'के माध्यम से पुष्पा टेटे, 'देशज स्वर'के माध्यम से सुनील मिंज और सांध्य दैनिक 'झारखंड न्यूज लाइन'के माध्यम से शिशिर टुडु आदिवासी विमर्श को बढ़ाने में लगे हैं। बड़ी संख्या में मुख्यधारा की पत्रिकाओं ने आदिवासी विशेषांक निकालकर आदिवासी विमर्श को आगे बढाने में मदद की है, जैसे- 'समकालीन जनमत' (2003), 'दस्तक' (2004), 'कथाक्रम'(2012), 'इस्पातिका' (2012) आदि। शुरू में हिंदी की प्रमुख पत्रिकाओं ने आदिवासी मुद्दों को छापने में उतनी रुचि नहीं दिखाई लेकिन अब विमर्श की बढ़ती स्वीकारोक्ति के साथ ही इन पत्रिकाओं में आदिवासी जीवन को जगह मिलने लगी है। छोटी पत्रिकाओं में आदिवासी लेखकों को पर्याप्त जगह मिल रही है।

आदिवासी लेखन विविधताओं से भरा हुआ है। मौखिक साहित्य की समृद्ध परंपरा का लाभ आदिवासी रचनाकारों को मिला है। आदिवासी साहित्य की उस तरह कोई केंद्रीय विधा नहीं है, जिस तरह स्त्री साहित्य और दलित साहित्य की आत्मकथात्मक लेखन है। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक-सभी प्रमुख विधाओं में आदिवासी और गैर-आदिवासी रचनाकारों ने आदिवासी जीवन समाज की प्रस्तुति की है। आदिवासी रचनाकारों ने आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व के संघर्ष में कविता को अपना मुख्य हथियार बनाया है। आदिवासी लेखन में आत्मकथात्मक लेखन केन्द्रीय स्थान नहीं बना सका, क्योंकि स्वयं आदिवासी समाज 'आत्म'से अधिक समूह में विश्वास करता है। [17] अधिकांश आदिवासी समुदायों में काफी बाद तक भी निजी और निजता की धारणाएं घर नहीं कर पाईं। परंपरा, संस्कृति, इतिहास से लेकर शोषण और उसका प्रतिरोध-सब कुछ सामूहिक है। समूह की बात आत्मकथा में नहीं, जनकविता में ज्यादा अच्छे से व्यक्त हो सकती है। आदिवासी कलम की धार तेजी से अपने प्रभाव क्षेत्र का विस्तार कर रही है। आजादी से पहले आदिवासियों की मूल समस्याएं वनोपज पर प्रतिबंध, तरह-तरह के लगान, महाजनी शोषण, पुलिस-प्रशासन की ज्यादतियां आदि हैं जबकि आजादी के बाद भारतीय सरकार द्वारा अपनाए गए विकास के गलत मॉडल ने आदिवासियों से उनके जल, जंगल और जमीन छीनकर उन्हें बेदखल कर दिया। विस्थापन उनके जीवन की मुख्य समस्या बन गई। इस प्रक्रिया में एक ओर उनकी सांस्कृतिक पहचान उनसे छूट रही है, दूसरी ओर उनके अस्तित्व की रक्षा का प्रश्न खड़ा हो गया है। अगर वे पहचान बचाते हैं तो अस्तित्व पर संकट खड़ा होता है और अगर अस्तित्व बचाते हैं तो सांस्कृतिक पहचान नष्ट होती है, इसलिए आज का आदिवासी विमर्श अस्तित्व और अस्मिता का विमर्श है। चूंकि आदिवासी साहित्य अपनी रचनात्मक ऊर्जा आदिवासी विद्रोहों की परंपरा से लेता है, इसलिए उन आंदोलनों की भाषा और भूगोल भी महत्वपूर्ण रहा है। आदिवासी रचनाकारों का मूल साहित्य उनकी इन्हीं भाषाओं में है। हिंदी में मौजूद साहित्य देशज भाषाओं में उपस्थित साहित्य की इसी समृद्ध परंपरा से प्रभावित है। कुछ साहित्य का अनुवाद और रूपांतरण भी हुआ है। भारत की तमाम आदिवासी भाषाओं में लिखा जा रहा साहित्य हिंदी, बांग्ला, तमिल जैसी बड़ी भाषाओं में अनुदित और रूपांतरित होकर एक राष्ट्रीय स्वरूप ग्रहण कर रहा है। प्रकारांतर से पूरा आदिवासी साहित्य बिरसा, सीदो-कानू और तमाम क्रांतिकारी आदिवासियों और उनके आंदोंलनों से विद्रोही चेतना का तेवर लेकर आगे बढ़ रहा है।[18]

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580|

| Volume 9, Issue 11, November 2022 |

| DOI: 10.15680/IJMRSETM.2022.0911008 |

संदर्भ

1. उमा शंकर चौधरी (सं.) : हासिये की वैचारिकी; विनायक तुकाराम : आदिवासी कौन, 2008, अनामिका पब्लिशर, नई दिल्ली, पृ. 251
2. गंगा सहाय मीणा (सं.) : *आदिवासी साहित्य विमर्श,* अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रिब्यूटर प्रा. लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2014, पृ. 37
3. रमणिका गुप्ता : *आदिवासी विकास से विस्थापन,* राधाकृष्णन प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018, पृ. 12
4. रमणिका गुप्ता; (सं.) दीपक कुमार, देवेंद्र चौबे; : *आदिवासी अस्मिता के प्रश्न,* पृ. 357-358
5. उषा कीर्ति रावत, सतीश पांडे, शीतला प्रसाद दुबे (सं.) : *आदिवासी केंद्रित हिंदी साहित्य,* हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012, पृ. 17
6. रमणिका गुप्ता : *आदिवासी साहित्य यात्रा,* राधाकृष्णन प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ. 25
7. वही, पृ. 2
8. खन्ना प्रसाद अमीन : *आदिवासी साहित्य,* श्री नटराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृ. 24
9. उषा कीर्ति राणावत, सतीश पांडे, शीतला प्रसाद दुबे (सं.) : *आदिवासी केंद्रित हिंदी साहित्य,* हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012, पृ. 30
10. वंदना टेटे : *आदिवासी दर्शन और साहित्य,* स्पेस पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2016, पृ. 34
11. गंगा सहाय मीणा : *आदिवासी चिंतन की भूमिका,* अनन्या प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृ. 1
12. विशाला शर्मा; दत्ता कोल्हारे : *आदिवासी साहित्य एवं संस्कृति,* स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृ. 21
13. आदिवासी साहित्य विमर्श-गंगा सहाय मीणा, (लेख-भाषा, साहित्य और आदिवासी स्त्रियाँ -वंदना टेटे) अनामिका पब्लिशर्स पृष्ठ 193-194
14. आदिवासी भाषा और शिक्षा- रमणिका गुप्ता, स्वराज प्रकाशन, पृष्ठ 14-15
15. मातृभाषा की नागरिकता जरूरी है - सदानंद शाही, जनसत्ता, 23 फरवरी, 2020 पृष्ठ 7
16. आदिवासी भाषा और शिक्षा - रमणिका गुप्ता, पृष्ठ 8-9
17. किस्सागो - मारियो वार्गास ल्योसा, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ 3
18. आदिवासी नहीं नाचेंगे - हाँसदा सौभेन्द्र शेखर, राजपाल एण्ड संस, पृष्ठ 172

INNO SPACE
SJIF Scientific Journal Impact Factor
Impact Factor:
7.580

doi crossref

निस्केयर
NISCAIR

INTERNATIONAL JOURNAL
OF MULTIDISCIPLINARY RESEARCH
IN SCIENCE, ENGINEERING, TECHNOLOGY AND MANAGEMENT

+91 99405 72462 +91 63819 07438 ijmrsetm@gmail.com